साहित्यसुधा
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यकारों की रचना स्थली
वर्ष: 2, अंक 41, जुलाई(द्वितीय), 2018

प्रेमचन्द की परम्परा और हिन्दी उपन्यासकार

हिन्दी–उपन्यास साहित्य सुसुप्त जनमानस के अन्तःकरण में नई स्फूर्ति–चेतना एवं समाज तथा राष्ट्र के प्रति विवेक–प्रधान चिन्तन का प्रतीक है। चिन्तन की यह धारा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से नित्य नूतनता का अधिकार लिए इतिहास के साथ–साथ किसी महत्वपूर्ण घटना की ओर आगे बढ़ रही है जिससे हमारे पास प्रेमचन्द के समानान्तर या उनसे बड़े व्यक्तित्व सम्भव हैं। यदि उपन्यास साहित्य के इतिहास का अवलोकन करें तो पायेंगे कि ब्रह्मसमाज से लेकर आर्यसमाज तक अनेक सुधारवादी संगठनों की नई जागरूकता से प्रभावित होकर भारतीय–मिट्टी में अपने जड़े रोप चुका था। सन् 1882 ई. से लेकर सन् 1919 ई. तक का कालखण्ड रचनात्मक उर्जा की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। इसके पश्चात 'सेवासदन' सन् 1918 ई. से 'गोदान' सन् 1936 ई. तक हिन्दी उपन्यास में क्रान्ति उपस्थित करने वाले उपन्यासकार प्रेमचन्द ने उपन्यास को मनोरंजन की सीमा से मुक्त कर जीवन और समाज के व्यापक सत्य से जोड़ा। उनके उपन्यास पारिवारिक या क्षेत्रीय सीमाओं में ही फँसकर नहीं रह गए अपितु उनकी विषय–भूमि में सम्पूर्ण देश की राजनीतिक उथल–पुथल सिमट आती है। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं के द्वारा न केवल अपने समसामयिक परिवेश को आलोकित किया अपितु अनागत के प्रेमचन्द की जागरूकता नवीनयुग की स्थापना का प्रेरणा स्रोत कही जा सकती है। प्रेमचन्द के समान ही जयशंकर प्रसाद, चण्डीप्रसाद शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', राजा राधारमण सिंह, ऋषभचरण जैन, सियारामशरण गुप्त एवं उषा देवी मित्रा आदि अन्य समकालीन रचनाकारों ने अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को अपने उपन्यासों

में गभीरता से उठाया। परिणामस्वरूप मानवतावाद एवं राष्ट्रवाद, जैसे निकष सामने आये लेकिन इनके कथा–साहित्य की प्रेमचन्द की तुलना में अधिक महत्व प्राप्त न हो सका और प्रेमचन्द को बड़ा कथाकार माना गया।

प्रेमचन्दोत्तर काल में हिन्दी उपन्यास तथा उसकी समीक्षा जिन दिशाओं की ओर मुड़े हैं और उन्होंने अपने आधुनिकता के जिन आयामों के बीच लाकर रखा है उनमें दो धाराऐं मुख्यतः परिलक्षित होती हैं। पहली मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास तथा उससे प्रभावित मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा और दूसरे वर्ग संघर्ष पर आधारित प्रगतिवादी और उसकी अनुगामिनी मार्क्सवादी समीक्षा। "ये दोनों ही विचारधाराएं पश्चिम से छनकर सीधे हिन्दी उपन्यासों में आयी हैं। उस युग में समस्त जगत के क्षितिज पर जो महान व्यक्तित्व उभरकर सामने आये, वे थे फ्रायड और कार्ल मार्क्स। दुनिया का शायद ही ऐसा कोई साहित्य या लेखक हो जो इन दोनों विचार प्रणाली से प्रभावित न हुआ हो। कुछ समय के उपरान्त पाश्चात्य साहित्य में ज्यो पाल सात्र का नाम उभर कर सामने आया जिन्होंने अस्तित्वाद के प्रवर्तन से विश्व साहित्य में धूम मचा दी। हिन्दी में इसका श्रेय अज्ञेय को देना चाहिए।"

कार्ल मार्क्स और उनके अनुवर्ती प्रचारकों ने साहित्य के क्षेत्र में एक युगानुकूल परिवर्तन उपस्थित किया। यह विचारधारा शोषित और पीड़ित की चिंता से उठी और मानव को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। यहाँ पूँजीवाद के विकास के साथ–साथ समाज में आयी विषमता का अध्ययन किया और पाया कि समाज के विभिन्न वर्गों में धन ही अतिविषमता का कारण है। इसी कारण साहित्य इसके प्रभाव में सर्वहारा के पक्ष में खड़ा हुआ। यशपाल, भैरव प्रसाद गुप्त, नागार्जुन, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, भगवती चरण वर्मा इसी

विचारधारा से प्रभावित हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग संघर्ष के प्रति इन उपन्यासकारों का विशेष झुकाव हुआ।

प्रेमचन्द युग में परम्परा आदर्श का अत्यधिक आग्रह था और इसका परिणाम हुआ कि नये सामाजिक और वैयक्तिकता के धरातल पर नहीं देखा जा सकता था। फ्रायड ने महत्वपूर्ण वैचारिकी विकसित की। फ्रायड ने चेतन मन के साथ अचेतन मन की जटिलताओं का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया उसका प्रभाव अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध हुआ। प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यास आधुनिकता की ओर मुड़ते हुआ दिखाई देता है। 'गोदान' के माध्यम से इसकी सूचना हमें मिल जाती है।

प्रेमचन्द के पश्चात् लक्ष्य करने योग्य उपन्यासकार राहुल सांकृत्यायन, ऐतिहासिक सन्दर्भ में अपने साम्यवादी सिद्धान्तों का उत्क्षेप्रण करते हैं। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने मनोविश्लेषणवाद और व्यक्ति–वैशिष्ट्य के माध्यम से उपन्यास क्षितिज को असाधरण विस्तार दिया। प्रेमचन्द पहले ही हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान केन्द्रीय भूमिका की सम्भावना व्यक्त कर चुके थे। इस धारा के सर्जनात्मक विस्फोट से उनकी बात सच साबित हुई दिखती है। जनचेतना को उर्जा सम्पन्न आंदोलन में बदल देने की दृष्टि से यशपाल, रांगेय राघव, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर, भैरवप्रसाद गुप्त और नागार्जुन आदि प्रमुख हैं। ये सभी उपन्यासकार जनविरोधी और पूँजीवादी नीतियों के विरुद्ध सार्थक हस्तक्षेप करते रहे। समान प्रतिबद्धता की दृष्टि से मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव भीष्म साहनी गुलशेर अहमद खाँ 'शानी' और शिवप्रसाद सिंह विशेष उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासकारों की समाज के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि है और ये कुल मिलाकर यथास्थिति का

विरोध करके सामाजिक परिवर्तन की मूलगामी आकांक्षा के साथ दिखलाई देते हैं। इन्होंने जीवन के अनेक क्षेत्रों की कुरूपता को उघाड़कर रख दिया है तथा नए समाज की प्रतिष्ठा में पूरी शक्ति के साथ लगे हैं। उपन्यास मैला आँचल में पुरानी और नई शक्तियों के द्वन्द्व को गति दी गई है। यह रचना न व्यक्ति केन्द्रित है और न ही परिवार केन्द्रित। इसमें सारे गाँव की छटपटाहट को एक ऐसी नजर से दृष्टिपात किया गया है जिसके अभाव में प्रगतिशील समाज की रचना सम्भव नहीं हो पाती हैं।

उपन्यासकार राही मासूम रजा का मूल कथ्य है कि– "देश में पैदा तो केवल बच्चे होते हैं, मरते–मरते वे हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, नास्तिक, हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी और न जाने क्या–क्या हो जाते हैं?" उपन्यासकार रामदरश मिश्र ने तो शोषण को केवल आर्थिक नहीं जातिगत श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता के तनाव में भी खोजने का प्रयत्न किया हैं। यथार्थ की जटिलता और नवकला रूप की विशेषताओं से युक्त उपन्यासकारों में श्रीलाल शुक्ल, जगदीश चन्द्र, मार्कण्डेय, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, मन्नू भण्डारी, यशपाल काशीनाथ सिंह, योगेश गुप्त और पंकज बिष्ट आदि प्रमुख हैं। श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य उपन्यास की सम्भावनाओं को उजागर करते हैं। उपन्यास 'रागदरबारी' अपने समय की विद्रुपताओं की तीखी और तल्ख टिप्पणी है। उपन्यास 'अग्निबीज' स्वाधीनोत्तर भारतीय ग्राम्य–जीवन की वास्तविकता को अंकित करता है। मुर्दाघर उपन्यास एक दीवार खड़ी करता है और पूरे समूह को दीवार के उसपार एकत्र करता है। जहाँ पर लोग जीवन की छोटी–छोटी आवश्यकताओं के लिए छटपटा रहे हैं, लड़ाई–झगड़ा कर रहे हैं, एक दूसरे को गाली दे रहे हैं। ये लोग तथाकथित शरीफ समाज के लोग नहीं हैं। भड़वे, चोर, उढ़ाईगीर और देह बेचने वाले लोग हैं। इनकी जिन्दगी अश्लीलता की

सीमा तक दलित है। छात्र आन्दोलन को केन्द्र में रखकर लिखा गया "अपना–मोर्चा" पहला उपन्यास है। उपन्यास 'लेकिन दरबाजा' में पंकज बिष्ट ने कला में मूल्यों के प्रति छीजती हुई निष्ठा कि अंकन संवेदना के स्तर पर किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की सफलता जीवन का सघन और प्रामाणिक चित्रण करने में ही निहित है। 'मुझे चाँद चाहिए', 'वेदरवल', 'नौकर की कमीज', 'आँवा', 'पीली आँधी', 'कितने पाकिस्तान', 'कलिकथा वाया बाई पास' एवं 'चाक' आदि उपन्यासों के मूल्य में मानव–मंगल और मानव की स्वतन्त्र–सत्ता का विकासोन्मुख भावबोध है। हिन्दी उपन्यासकार की अन्तःदृष्टि निरन्तर अधिक तार्किक और यथार्थ हुई है। क्रमशः कहा जा सकता है कि आज के सन्दर्भ में सबसे अधिक प्रासंगिक और सार्थक है। इस दिशा में अनेक सम्भावनाएँ हैं जो उपन्यासों में वर्जित आदर्शों को अपनाकर ही संस्कार–युक्त शिक्षा की सार्थकता होगी।

संदर्भ

1. हिन्दी उपन्यास पहचान और परख, इन्द्रनाथ मदान
2. उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान, डॉ. दंगल झाल्टे
3. हिन्दी साहित्य कोश भाग–दो, धीरेन्द्र वर्मा
4. हिन्दी उपन्यास 'एक अर्न्तयात्रा', डॉ. रामदरश मिश्र

डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता
हिन्दी विभाग
किरोड़ीमल महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें